अधूरी कहानी

विष्णु प्रभाकर

अधूरी कहानी

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नयी दिल्ली-110002

अधूरी कहानी

विष्णु प्रभाकर

प्रकाशक :
भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
शफीक मेमोरियल
17-बी, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट
नयी दिल्ली-110 002

© भारतीय प्रौढ शिक्षा संघ
पहला संस्करण 1987 : मूल्य : 5.00

मुद्रक :
त्यागी प्रिंटिंग प्रेस
त्रिलोकपुरी
दिल्ली-110 091

निवेदन

भारत जैसे देश में, जहां आज भी गरीबी और निरक्षरता बड़े पैमाने पर फैली हुई है, विज्ञान का एक काम यह भी है कि वह आम लोगों के तर्कपूर्ण ढंग से सोचने तथा काम करने की, और समय के साथ चलते हुए एक सही फैसले पर पहुंचने की, शक्ति को बढ़ावा दे। कहने की जरूरत नहीं कि विज्ञान महज उद्देश्य नहीं है बल्कि वह एक दृष्टिकोण है। इसलिए यह जरूरी है कि लोगों के सोचने-समझने के दृष्टिकोण में आधुनिकता लायी जाए, ताकि वे अपने और अपने आसपास के विकास से जुड़े हुए सवालों पर तर्कपूर्ण नजरिये से विचार करें और खेती तथा उद्योग-धन्धों में विज्ञान एवं तकनीकी से भरपूर लाभ उठा सकें। दरअसल, वैज्ञानिक मिजाज को सही तरीके से समझना और उसे कारगर बनाना आज हमारे देश की एक बड़ी जरूरत है। अगर देश में उन्नति की रफ्तार को तेजी से आगे ले जाना है तो विज्ञान और तकनीकी को हर भारतीय के जीवन का एक हिस्सा बनना होगा।

प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने भी भारत के वैज्ञानिकों से कहा है कि "देश को 21वीं शताब्दी में जाने के लिए हमें आज की जरूरतों के हिसाब से ही नहीं बल्कि उस समय की जरूरतों को सोचकर अभी से काम शुरू करना होगा। यह बात किसी एक क्षेत्र में नहीं बल्कि

कृषि, उद्योग, रक्षा और अन्य सभी क्षेत्रों के अनुसंधान और विकास योजनाओं पर लागू होती है।" प्रधानमंत्री ने वैज्ञानिकों को इस बात के लिए भी आगाह किया है कि "वे नये उत्पादन तैयार करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखें कि उसके कारण पर्यावरण खराब न हो।"

विज्ञान और प्रौद्योगिकी की इसी महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए अन्य महत्वपूर्ण विषयों के साथ ही भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ ने नवसाक्षर प्रौढ़ पाठकों के लिए विज्ञान एवं तकनीकी विषयों से जुड़े सन्दर्भों पर भी उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करने की दिशा में पहल किया है। यह पुस्तक भी इसी सिलसिले की एक सुखद उपलब्धि है। बड़ी सरल और रोचक भाषा शैली में अपने विषय को प्रस्तुत करने वाली पुस्तकें, निस्सन्देह अद्वितीय हैं।

अपनी पुस्तक को प्रकाशित करने का अवसर देने के लिए भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ की ओर से हम सभी सहयोगी लेखकों के प्रति आभारी हैं। साथ ही हम इन पुस्तकों के प्रकाशन में 'एस्पेबे' (एशियन साउथ पैसेफिक ब्यूरो) से मिली सहायता के लिए भी विनम्र आभारी हैं।

—जे० सी० सक्सेना
(महासचिव)

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नई दिल्ली-110002
10 दिसम्बर, 1987

मेरा वतन

उसने सदा की भांति तहमद लगा लिया था और फैज ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तेजी से झटका देता था परन्तु पैर यंत्रवत् आगे बढ़ते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बेतरह कांप उठता था, पर उसकी गति पर अंकुश नहीं लगता था। देखने वालों के लिए वह एक आधे पागल से अधिक समझदार नहीं था। वे अक्सर उसका मजाक उड़ाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊंचे स्वर में गालियां पुकारते, पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती—न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आंखों में क्या होता था—वे सहम जाते, सोडा वाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अन्दरूनी बस्ती

को शोले की तरह सुलगाती हुई, फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, "जरूर इसका सब कुछ लुट गया है"..... "इसके रिश्तेदार मारे गये हैं", ..."नहीं, नहीं, ऐसा लगता है कि काफिरों ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोंक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिड़िया के बच्चे की चीं-चीं में पलटती हुई खत्म नहीं हो गयी है।"

"और यह सब देखता रहा है।"

"हां! यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आंखों में उतर आया है। उसी खौफ ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है। वह खौफ इसके लहू में इतना घुलमिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।"

"डर", किसी ने कहा था, "इसकी आंखों में मौत की तसवीर है, वह मौत जो कत्ल, खूंरेजी और फांसी का निजाम संभालती है।"

एक बार एक राह-चलते दर्दमन्द ने दुकानदार से पूछा, "यह कौन है?"

दुकानदार ने जवाब दिया, "मुसीबतजदा है जनाब! अमृतसर में रहता था। काफिरों ने सब कुछ लूटकर इसके बीवी-बच्चों को आग में भून दिया।"

"जिन्दा?" राहगीर के मुंह से अचानक निकल गया।

दुकानदार हंसा, "जनाब किस दुनिया में रहते हैं! वे दिन बीत गये जब आग काफिरों के मुरदों को जलाती थी। अब तो वह जिन्दों को जलाती है।"

राहगीर ने तब कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी, फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा, "कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है।"

"जी हां। वकील था, हाईकोर्ट का बड़ा वकील। लाखों रुपयों की जायदाद छोड़ आया है।"

"अच्छा जी।"

"जनाब ! क्या पूछते हैं ? आदमी आसानी से पागल नहीं होता। दिल पर चोट लगती है तभी वह टूटता है। पर जब एक बार टूट जाता है तो फिर नहीं जुड़ता। आजकल चारों तरफ यही कहानी है। मेरा घर का मकान नहीं था, लेकिन दुकान का सामान इतना था कि तीन मकान बन सकते थे।"

"जी हां ! खुदा का फजल है। मैंने उन्हें पहले ही भेज दिया था। जो पीछे रह गये थे उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करे हिन्दुस्तान को··· "

राहगीर उठा। उसने बात काटकर इतना ही कहा—"देख लेना एक दिन वह गारत होकर रहेगा। खुदा के घर में देर है पर अंधेर नहीं।"

और वह चला गया, परन्तु उस अर्द्ध-विक्षिप्त के क्रम में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह उसी तरह धीरे-धीरे बाजारों में से गुजरता, शरणार्थियों की भीड़ में धक्के खाता, परन्तु उस ओर देखता नहीं। उसकी दृष्टि तो आस-पास की दुकानों और मकानों पर जा अटकती थी। अटकती ही नहीं चिपक जाती थी। सिकनातीस लोहे को खींच लेती है,

वैसे ही वे बेजबां इमारतें, जो जगह-जगह पर खंडहर की शक्ल में पलट चुकी थीं, उसकी नजर और नजर के साथ उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सभी को अपनी ओर खींच लेती थीं और फिर उसे जो कुछ याद आता, वह उसे पैर के तलुए से होकर सिर में निकल जाने वाली सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल के कोने में जा बैठता था। इसी कारण वह आज तक मर नहीं सका था, केवल सिसकियां भरता रहता था। वे सिसकियां, जिनमें न शब्द थे, न आंसू। वे सूखी हिचकियों की तरह उसे बे-जान किये हुए थीं।

सहसा उसने देखा सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनाया था। उसके ऊपर के कमरे में उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे में उसने आंखें खोली थीं और उसी कमरे में उसके बच्चों ने पहली बार प्रकाश-किरण को छुआ था। उस मकान के कण-कण में उसके जीवन का इतिहास लिखा था। उसे फिर बहुत-सी कहानियां याद आने लगीं। वह तब उन कहानियों में इतना डूब गया था कि उसे परिस्थिति का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह जीने पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ा और जैसा कि वह सदा करता था उसने घण्टी पर हाथ डाला। बे-जान घण्टी शोर मचाने लगी और तभी उसकी नींद टूट गयी। उसने अपने चारों ओर देखा। वहां सब एक ही तरह के आदमी नहीं थे। वे सब एक ही जबान नहीं बोलते थे। फिर भी उनमें ऐसा कुछ था जो उन्हें एक कर रहा था और वह इस एके

में अपने लिए कोई जगह नहीं पाता था। उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा, पर तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतर आया। उसने ढीला पाजामा और कुरता पहना था, पूछा, "कहिए जनाब ?"

वह अचकचाया, "जी !"

"जनाब किसे पूछते थे ?"

"जी मैं पूछता था कि मकान खाली है ?"

ढीले पाजामा वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाईगीरा हो। फिर मुंह बनाकर तलखी से जवाब दिया, "जनाब ! तशरीफ ले जाइए वरना ...."

आगे उसने क्या कहा वह यह सुनने के लिए नहीं रुका, बढ़ा चला गया। उसकी गति में तूफान भर उठा, उसके मस्तिष्क में बवंडर उमड़ आया, और उसका चिन्तन गति की चट्टान पर टकराकर पाश-पाश हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनारकली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लांघ चुका था। वह बहुत दूर निकल गया था।

यहां आकर वह कांपा। एक टीस ने उसे कुरेद डाला जैसे बढ़ई ने पेंच में पेचकस डालकर पूरी तरह शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरू कर दिया हो। हाईकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दृष्टि गड़ाकर उसके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया—वह कहां बैठता था, वह कौन से कपड़े पहनता था कि उसका हाथ सिर पर गया, जैसे उसने सांप को छुआ। उसने उसी क्षण हाथ खींच लिया, पर मोहक

स्वप्नों ने उसकी रंगीन दुनिया की रंगीनी को उसी तरह बनाये रखा। वह तब इस दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर की जो वास्तविक दुनिया है वह उसके लिए मृगतृष्णा बन गयी थी। उसने अपने पैरों के नीचे की धरती को ध्यान से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तस्वीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अन्तःस्थल पर उभर आयी। वह इसी धरती पर चला करता था। उसके आगे-पीछे उसे नमस्कार करते, सलाम झुकाते बहुत से आदमी आते और जाते थे। दूसरे वकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और.....

विचारों के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलांग लगायी—उसका ध्यान जज के कमरे में जा पहुंचा। जब वह अपने केस में बहस शुरू करता था तो कमरे में सन्नाटा छा जाता था। केवल उसकी वाणी की प्रतिध्वनि गूंजा करती थी, केवल "मी लार्ड" शब्द बार-बार उठता और "मी लार्ड" कलम रखकर उसकी बात सुनते.....

हनुमान फिर कूदे और वह अब बार एसोसिएशन के कमरे में आ गया था। इसमें न जाने कितने कहकहे उसने लगाये थे, कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की थीं, वहीं बैठकर उसने महापुरुषों को अनेक बार श्रद्धांजलियां भेंट की थीं। विदा और स्वागत के खेल खेले थे।

वह अब उस कुर्सी के बारे में सोचने लगा जिस पर वह बैठा करता था। तब उसे कमरे की दीवारों के साथ-साथ दरवाजे के पायदान की याद भी आ गयी और वह

पायदान को देखने के लिए आतुर हो उठा। वह सब कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ा, पर तभी किसी ने उसे कचोट लिया। उसने देखा कि लान की हरी घास मिट्टी में समा गयी है। रास्ते बन्द हैं, केवल डरावनी आंखों वाले सैनिक मशीनगन संभाले, हेलमेट पहने तैयार खड़े हैं कि कोई आगे बढ़े और वे शूट कर दें। उसने हरी वर्दी वाले होमगार्डों को भी देखा और देखा कि राइफल थामे पठान लोग जब मन उठता है, फायर कर देते हैं। वे मानो छड़ी के स्थान पर राइफल का प्रयोग करते हैं और उनके लिए जीवन की पवित्रता बन्दूक की गोली की सफलता पर निर्भर करती है। उसे स्वयं जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नहीं था। वह खंडहरों के लिए आंसू भी नहीं बहाता था। उसने अग्नि की ऊंची उठती लपटों को अपनी आंखों से उठते देखा था। उसे तब खाण्डव वन की याद आ गयी थी, जिसकी नींव पर इन्द्र-प्रस्थ सरीखे वैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था। तो क्या इस महानाश की नींव पर भी किसी गौरव-गरिमामय कलाकृति का निर्माण होगा? इन्द्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत सम्भव हुआ, जिसने इस अभागे देश के मदोन्मत्त किन्तु कमजोर वीरता को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है।

एक दिन उसने अपने बड़े बेटे से कहा था, "जिन्दगी न जाने क्या-क्या खेल खेलती है। वह तो बहुरूपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने

मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। उसने परिवार को एक छोटे-से कस्बे में छोड़ा और आप आगे बढ़ गया। वह अपनी उजड़ी हुई दुनिया को फिर से बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला। लिखा था, "पिताजी न जाने कहां चले गये!"

तार पढ़कर बड़ा भाई अचरज से कांप उठा। वह घर लौटा और पिता की खोज करने लगा। उसने मित्रों को लिखा, रेडियो पर समाचार भेजे, अखबारों में विज्ञापन निकलवाये। सब कुछ किया, पर वह यह नहीं समझ सका कि आखिर वे कहां गये और क्यों गये? वह इसी उधेड़-बुन में था कि एक दिन सवेरे-सवेरे देखा—वे चले आ रहे हैं, शान्त और बिलकुल सहज।

"आप कहां चले गये थे?" पहली भावुकता का उफान समाप्त होने पर पुत्र ने पूछा।

शान्त मन से पिता ने उत्तर दिया, "लाहौर।"

"लाहौर!" पुत्र हठात् कांप उठा, "आप लाहौर गये थे?"

"हां।"

"कैसे?"

पिता बोले, "रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूं।"

"पर आप वहां क्यों गये थे?"

"क्यों गया था?" जैसे उसकी नींद टूटी। उसने अपने आपको सम्भालते हुए कहा, "वैसे ही, देखने के लिए चला गया था।"

और आगे की बहस से बचने के लिए वह उठकर चला गया। उसके बाद उसने इस बारे में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इनकार कर दिया। उसके पुत्रों ने पिता के इस परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझा सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे, क्योंकि वे दुनिया के दूसरे काम सदा की भांति करते थे। हां, पंजाब की बात चलती तो आह भर कर कह देते थे, "गया पंजाब! पंजाब अब कहां है?" पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे। इसी बीच में वे एक दिन फिर लाहौर चले गये, परन्तु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सकें, वे लौट भी आये। पत्नी ने पूछा, "आखिर क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं कैसे? आखिर आप वहां क्यों जाते हैं?"

तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने धीरे से कहा, "क्यों जाता हूं, क्योंकि वह मेरा वतन है। मैं वहां पैदा हुआ हूं। वहां की मिट्टी में मेरी जिन्दगी का राज छिपा है। वहां की हवा में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है।"

पत्नी की आंखें भर आयीं, बोली, "पर अब क्या, अब सब कुछ गया।"

"हां, सब कुछ गया।" उन्होंने कहा, "मैं जानता हूं अब सब कुछ नहीं हो सकता पर न जाने क्या होता है। उसकी याद आते ही मैं अपने आप को भूल जाता हूं और मेरा वतन मिकनातीस की तरह मुझे अपनी ओर खींच लेता है।"

भरे-भरे से स्वर में पत्नी ने कहा, "नहीं-नहीं, आपको अपने मन को सम्भालना चाहिए। जो कुछ चला गया उसका दुःख तो जिन्दगी भर सालता रहेगा। भाग्य में यही लिखा था, पर अब जान-बूझ कर आग में कूदने से क्या लाभ !"

"हां, अब तो जो कुछ बचा है उसी को सहेज कर गाड़ी खींचना ठीक है।" उसने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नये कार्यक्षेत्र में जुट गया। उसने फिर वकालत का चोगा पहन लिया। उसका नाम फिर बार एसोसिएशन में गूंजने लगा। उसने अपनी जिन्दगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और शीघ्र ही वह अपने काम में इतना डूब गया कि देखने वाले दांतों के तले उंगली दबाकर कहने लगे, "इन लोगों में कितना जीवट है। सहस्रों वर्षों में अनेक पीढ़ियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था वह क्षण भर में राख का ढेर हो गयी, तो बिना आंसू बहाये उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों में ही बना देना चाहते हैं।"

उनका अचरज ठीक था। तम्बुओं और कैम्पों के आस-पास, सड़कों के किनारे राह से दूर, भूत-प्रेतों के चिर-परिचित अड्डों में, उजड़े गांवों में, खोले और खादर में, जहां भी मनुष्य की शक्ति कुण्ठित हो चुकी थी, वहीं ये लोग पहुंच जाते थे। और पादरी के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे। उन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती अनन्त है, शक्ति असीम है, फिर निराशा कहां रह सकती है ?

ठीक उसी समय जब उसका बड़ा पुत्र अपनी नयी दुकान का मुहूर्त करने वाला था, उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला, "पिताजी पांच दिन से लापता हैं।" पढ़कर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकड़े-टुकड़े करके उसने दूर फेंक दिये। और खिनखिनाया, "वे नहीं मानते तो उन्हें अपने किये का फल भोगना चाहिए। वे अवश्य लाहौर गये हैं।"

उसका अनुमान सच था। जिस समय वे इस प्रकार चिन्तित हो रहे थे उसी समय लाहौर के एक दुकानदार ने एक अर्धविक्षिप्त व्यक्ति को, जो तहमद लगाये फैज कैप ओढ़े फटी-फटी आंखों से चारों ओर देखता हुआ घूम रहा था, पुकारा, "शेख साहब! सुनिये तो। बहुत दिन में दिखाई दिये, कहां चले गये थे?"

उसी अर्द्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया, "मैं अमृतसर चला गया था।"

"क्या?" दुकानदार ने आंखें फाड़कर कहा, "अमृतसर।"

"हां, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।"

दुकानदार की आंखें क्रोध से चमक उठीं, बोला, "मैं जानता हूं। अमृतसर में साढ़े तीन लाख मुसलमान रहते थे पर आज एक भी नहीं है।"

"हां," उसने कहा, "वहां आज एक भी मुसलमान नहीं है।"

"काफिरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नहीं छोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिन्दू या सिख नहीं

है और कभी होगा भी नहीं।"

वह हंसा, उसकी आंखें चमकने लगीं। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बेरंग था। और वह हंसता चला गया, हंसता चला गया, "वक्त, धरती, मोहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं? सबसे बड़ा मजहब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बन्दा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वही मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।"

दुकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा, "आदमी जब होश खो बैठता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।"

साथी ने जवाब दिया, "जनाब! तब उसकी जबान से खुदा बोलता है।"

"बेशक!" उसने कहा और मुड़कर उस अर्द्ध-विक्षिप्त से बोला, "शेख साहब, आपको घर मिला?"

"सब मेरे ही घर हैं।"

दुकानदार मुस्कराया, "लेकिन शेख साहब। जरा बैठिये तो, अमृतसर में किसी ने आपको पहचाना नहीं।"

वह ठहाका मारकर हंसा, "तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूं।"

"सच?"

"हां, हां।" उसने आंखें मटकाकर कहा।

"तुम जीवट के आदमी हो।"

और तब दुकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मंगा कर दिया। सावधानी से उन्हें पल्ले में बांध-

कर और एक टुकड़े को चबाता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दुकानदार ने कहा, "आदमी है। किसी दिन लखपति था, आज फाकामस्त है।"

"खुदा अपने बन्दों का खूब इम्तहान लेता है।"

"जन्नत ऐसों को ही मिलता है।"

"जी हां। हिम्मत भी खूब है। जान-बूझकर आग में जा कूदा।"

"वतन की याद ऐसी ही होती है।" उसके साथी ने, जो दिल्ली का रहने वाला था, कहा, "अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है तब दिल भर आता है।"

और वह आगे बढ रहा था। माल पर भीड़ बढ़ रही थी। कारें भी कम नहीं थीं और अंग्रेज, एंग्लो-इंडियन तथा ईसाई नारियां पहले-जैसा बाजार कर रही थीं। फिर भी उसे लगा कि वह माल जो उसने देखा था, यह नहीं है। शरीर कुछ वैसा ही था, पर उसकी आत्मा झुलस चुकी है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहां घूम रहे थे उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल की तरह उसके पैर डगर को पहचानते थे। आंखें इधर-उधर देख रही थीं। पैर अपने रास्ते पर बिना डगमगाये बढ़ रहे थे। और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली फिर बुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अन्दर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका और

वह ला कालेज के सामने निकल आया। उस समय उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा था। कभी वह इस कालेज में पढ़ा करता था.....

वह कांपा, उसे याद आया, उसने इस कालेज में पढ़ाया भी है...वह फिर कांपा। हूक फिर उठी। उसकी आंखें भर आयीं, उसने मुंह फिरा लिया। उसके सामने वह रास्ता था जो उसे दयानन्द कालेज ले जा सकता था। एक दिन पंजाब विश्वविद्यालय 'दयानन्द विश्वविद्यालय' कहलाता था...

तब एक भीड़ उसके पास से निकल गयी। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे, बे-घर और बे-जर, लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कड़वा हो उठा। उसने चिल्ला कर उन्हें गालियां देनी चाही। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गये। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा। दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ा। वह जल्दी-से-जल्दी कालेज के कैम्प में पहुंच जाना चाहता था। उन दो व्यक्तियों में से एक ने, जिसने उसे पहचाना था, दूसरे से कहा, "मैं इसको जानता हूं।"

"कौन हैं?"

"हिन्दू।"

साथी अचकचाया, "हिन्दू?"

"हां, हिन्दू। लाहौर का एक मशहूर वकील..."

—और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल ली। वह आगे बढ़ा, उसने कहा, "जरूर

यह मुखबिरी करने आया है।"

उसके बाद गोली चली। एक हलचल, एक खटपटसी-मची। देखा एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परन्तु जो अनेक व्यक्ति उस पर झुक आये थे उनमें से एक ने उसे पहचाना और कांपकर पुकारा, "मिस्टर पुरी! तुम —तुम यहां, ऐसे···"

मिस्टर पुरी ने आंखें खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया पड़ रही थी, उन्हीं पुकारने वाले को देखा और धीरे से कहा "हसन··· हसन···"

आंखें फिर मिच गयीं। हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा, "जल्दी करो। टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी···"

भीड़ बढ़ती जा रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड, सबने उसे घेर लिया। हसन जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिद्वंद्वी बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उसे अचरज से देख रहा था। उसने एक बार झुककर कहा, "तुम यहां इस तरह क्यों आये, मिस्टर पुरी?"

मिस्टर पुरी ने एक बार फिर आंखें खोलीं। वे धीमे स्वर में फुसफुसाये, "मैं यहां क्यों आया? मैं यहां से जा ही कहां सकता हूं? यह मेरा वतन है, हसन! मेरा वतन·····"□

अधूरी कहानी

नारों की आवाज धीरे-धीरे धीमी, फिर बहुत धीमी पड़ गयी। प्लेटफार्म की भीड़ छंटने लगी और सब लोग अपनी-अपनी सीट पर आ बैठे। देखा, इसी बीच में एक मुस्लिम युवक एक हिन्दू सज्जन से उलझ पड़ा है। युवक कह रहा है, "हम पाकिस्तान नहीं चाहते लेकिन कांग्रेस ने मजबूर कर दिया है। हम अब उसे लेकर छोड़ेंगे।"

हिन्दू साहब ने तलखी से जवाब दिया, "पाकिस्तान! जो पाकिस्तान आप छह सौ बरस की हुकूमत में न बना सके, अब गुलाम रहकर बनाना चाहते हैं। एकदम नामुमकिन।"

एक भारी बदन के मुसलमान, जो सामने के बर्थ पर बैठे थे, बीच में बोल उठे, छह सौ नहीं साहब। हमने नौ सौ

बरस हुकूमत की है।"

"जी हां। नौ सौ वर्ष।"

"और उन नौ सौ बरस में हिन्दू बराबर हमसे नफरत करते रहे।"

"जी! क्या कहा आपने?" हिन्दू साहब बोले, "नफरत करते रहे? जो जुल्म करता है उससे नफरत की जाती है, प्यार नहीं किया जाता!"

उन मुसलमान भाई ने बड़े अदब से कहा, "जुल्म क्या है—इस पर सबकी अलग-अलग राय है, पर मेरे दोस्त! आप लोगों ने हमें सदा दुरदुराया। हमारी छाया से आपको परहेज रहा। माना हम जालिम थे। पर जालिम के पास भी दिल होता है। वह कभी-न-कभी पिघल सकता है। लेकिन परहेज सदा मुहब्बत की जड़ खोदता है। वह नफरत करना सिखाता है। आपने हमसे नफरत की और चाहा कि हम आपसे प्यार करें। वह कैसे हो सकता था? माफ करना, मैं आप लोगों की कदर करता हूं। मैं मेल-जोल का पूरा हामी हूं, पर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछना चाहूंगा।"

हिन्दू भाई की तेजी और तलखी अब कुछ घबराहट में बदलती जा रही थी और दूसरे मुसलमान साहब अनोखी अदा से मुस्कराने लगे थे। तो भी उन्होंने हा, "जी। जरूर पूछिये।"

वे मुसलमान भाई निहायत शराफत से बोले, "अछूत हिन्दू हैं, पर आप उन्हें ताकत सौंप दीजिय, तब वह आपसे प्यार करेंगे या नफरत?"

हिन्दू भाई सिटपिटाये। उन्हें एकाएक जवाब न सूझा मुसलमान साहब उसी संजीदगी से कहते रहे, "मैं जानता हूं आज आप उन्हें अपने बराबर मानते हैं। मेरे ऐसे हिन्दू दोस्त हैं, जो इन्सान-इन्सान के बीच के भेद को दुनिया का सबसे बड़ा पाप समझते हैं। पर मेरे दोस्त ! भेद की इस लकीर को बराबर गहरी करने में, जाने या अनजाने, जो लोग मदद करते आये हैं, उनके पापों का फल तो भुगतना ही पड़ेगा। आप यह न समझिये, मैं आपकी जाति और धर्म पर हमला कर रहा हूं। मैं आपके धर्म को समझता हूं। मेरे दिल में उसके लिए जगह है। मैं मुसलमानों की कमियों से भी वाकिफ हूं पर दूसरों में कमी है यह कहकर कोई अपनी कमी को सही साबित करने की कोशिश करे, तो वह महज अपनी जिद और बेवकूफी जाहिर करेगा। जो असलियत है उसका सामना करना ही इन्सान की इन्सानियत है। मैं आपको एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूं। मुझे वह मेरी वाल्दा ने सुनायी थी।"

इतना कहकर पल-भर रुके। डिब्बे में तब तक सन्नाटा छा गया था। पता नहीं लगा गाड़ी कब चल पड़ी और कब "शड़ाक-छू शड़ाक-छू" की गहरी आवाज करती हुई अगले स्टेशन पर जा खड़ी हुई। सूरज डूबने लगा था। एक भाई ने स्विच दबा दिया। बिजली की हल्की रोशनी से डिब्बा चमक उठा।

तब उन भारी बदन के मुसलमान भाई ने कहना शुरू किया, "मेरे दोस्त ! बात आज से तीस बरस पहले की है। हमारे सूबे में एक छोटा-सा कस्बा है। उसमें हिन्दू-

मुसलमान सभी रहते हैं। वे सदा आपस में मुहब्बत करते थे। एक दूसरे के दुःख सुख के साथी थे, लड़ते भी थे पर वह लड़ना प्यार की तड़प को और गहरा कर देता था। हिन्दुओं के त्यौहारों पर मुसलमान उन्हें बधाई देते थे। मौसम की पैदावार का लेना-देना चलता था। होली जलती तो जौ की बालें पहुंचाने का जिम्मा मुसलमानों पर था। ईद के दिन हिन्दू अपनी गाय-भैंसों का सारा दूध मुसलमानों को बांट देते थे। सवेरे ही दूध दुहकर वह अपने-अपने दरवाजों पर खड़े हो जाते और थोड़ा-थोड़ा दूध सब मुसलमानों को देते। उस दिन उनकी अंगीठियों से धुआं नहीं निकलता था, लेकिन उनके दिल की दुनिया खिल उठती। मैं नहीं जानता वह रिवाज कब और कैसे चला। इसकी बुनियाद जुल्म पर भी हो सकती है। पर उन दिनों यह मुहब्बत, इन्सानियत और हमदर्दी का सबूत बन गया था। जो हो, उस साल भी ईद आयी। मुसलमानों के घर जन्नत बने। उनके बच्चे फरिश्तों की तरह खिल उठे। लेकिन दुनिया आखिर दुनिया है। यहां जिन्दगी के बगल में मौत सोती है। रंज हमेशा खुशी का दामन पकड़े रहता है। इसीलिए जब सब लोग हंस रहे थे, घर में एक बालक दुःखी मन चुपचाप अपनी अम्मी की चारपाई के पास बैठा था। उसकी अम्मा फातिमा बीमार थी। उसकी सांस फूल रही थी। वह बेचैन हाथ-पांव फेंक रही थी। लेकिन यह बेचैनी बुखार की इतनी नहीं थी जितनी कि खाविन्द की याद की। परसाल अहमद का बाप जिन्दा था, तो घर में फुलवाड़ी खिली थी। वह अचानक एक दिन खुदा को

प्यारा हुआ, घर बीरान हो गया। आज ईद आई है लेकिन... एकाएक फातिमा को क्या सूझा, वह उठकर बैठ गयी। उसने हांफते-हांफते कहा, मेरे बच्चे। कितना दिन चढ़ गया ? तू दूध लेने नहीं गया !

अहमद ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं अम्मी।"

फातिमा के दिल को चोट लगी। उसकी आंखें भर आयीं। वह अपने को कोसने लगी, "मैं कैसी कमीनी हूं। साल का त्योहार आया है और मेरा बच्चा इस तरह मोहताज, बेबस बैठा है। नहीं, नहीं, आज ईद मनेगी, जरूर मनेगी !"

और उसने कहा, "अहमद। तू जल्दी जाकर दूध ले आ। मैं तब तक तेरे कपड़े निकालती हूं। जा जल्दी कर मेरे बच्चे।"

बच्चे ने एक बार अपनी अम्मी को देखा और फिर चुपचाप बाल्टी उठा कर बाहर चला गया। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। सब लोग दूध बांटकर अपने अपने काम में लग गये थे। रास्ते में उसके साथी हंसते-हंसते दूध से भरे लोटे और बाल्टी लिये चले आ रहे थे। उन्होंने उसे देखा और अचरज से कहा, "अरे, तुमने देर कर दी ? तुम अब तक कहां सो रहे थे ? अब तो सब दूध बंट चुका है। मियां, अब जाकर क्या करोगे ?"

अहमद ने सुना और उसका दिल बैठने लगा। उसकी बात ठीक थी। वह जिस दरवाजे पर जाता, वहां फर्श पर पड़े दूध के छींटों के अलावा उसे कुछ नहीं मिलता। तब सचमुच उसका दिल भर आया। आंखें नम हो उठीं।

लेकिन फिर भी उम्मीद की डोर पकड़े वह आगे बढ़ा चला गया कि अचानक एक दरवाजे पर किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, "अहमद ! अहमद !"

अहमद ने रुककर देखा, पुकारने वाला उसका सहपाठी दिलीप है। वह ठिठक गया। दिलीप दौड़ कर आया। बोला, "तू अब तक कहां था ? तेरी बाल्टी तो खाली है।"

अहमद की आवाज भर्रा रही थी। उसने कहा, "अम्मी बीमार है, मुझे देर हो गयी है।"

"तो ?

"दूध बिलकुल नहीं हैं ?"

"ना।"

फिर कई पल तक वह दोनों उसी दरवाजे पर, जहां आधा घंटा पहले दूध लेने वालों की आवाज गूंज रही थी, चुपचाप खड़े रहे कि अचानक दिलीप को कुछ सूझा। वह अन्दर दौड़ा गया। जाते-जाते उसने कहा, "तू यहीं ठहर, मैं अभी आया।"

अन्दर वह सीधा अपनी मां के पास पहुंचा और धीरे से बोला, "भाभी ! कुछ दूध और है क्या ?"

मां बोली, "हां है, तेरे और मुन्ने के लिए है। तू पियेगा ?"

"नहीं।"

अचरज से मां ने पूछा, "तो ?"

दिलीप नहीं बोला।

"अरे बात क्या है ? बता तो ?"

"अहमद को दूध नहीं मिला।"

"कौन अहमद ?"

"वह मेरे साथ पढ़ता है। उसकी मां बीमार है, इसलिए उसे देर हो गयी।"

कहते-कहते दिलीप ने अपनी मां को ऐसे देखा जैसे उस ने कोई कसूर किया हो। पर मां का दिल एकाएक खुशी से भर आया। वह मुस्करायी। उसने दूध का भरा लोटा उठाया और कहा, "चल–बता कहां है तेरा दोस्त ?"

दिलीप ने तब खुशी से छलांग लगायी। मां-बेटे दरवाजे पर आये। अहमद उसी तरह खड़ा था। दिलीप ने हंसते-हंसते कहा, "अहमद ! बाल्टी ला। जल्दी कर।"

दिलीप ने लोटे का दूध अहमद की बाल्टी में कर दिया, उसकी मुहब्बत अहमद के दिल में समा गयी। मां ने पूछा, "तेरी मां बीमार है ?"

"जी।"

"तो सेवैयां कौन बनायेगा ?"

"वही बनाएगी।"

"अच्छा, हमें भी खिलायेगा ना ?"

अहमद ने सिर हिलाकर कहा, "जरूर।"

मां हंस पड़ी। बोली, "भगवान तेरी मां को जल्दी अच्छा करेगा। जा, घर जा, जल्दी आता तो और भी दूध मिलता।"

और फिर दिलीप का हाथ पकड़कर उसकी मां अन्दर चली गयी। उसका दिल बार-बार यही कह रहा था, "परमात्मा मेरे बच्चे का दिल सदा इसी तरह खुला रखे।"

"उधर अहमद फूला-फूला घर आया। दरवाजे में

घुसते ही उसने पुकारा, "अम्मी। मैं दूध ले आया।"

फातिमा खिल उठी, "ले आया? बहुत अच्छा बेटा! कहां से लाया?"

अहमद खुशी से बोला, "अम्मी! बहुत देर हो गयी थी। सब दूध बंट चुका था, लेकिन दिलीप ने अपनी मां से जाकर कहा और फिर वे मुझे इतना दूध दे गयीं।"

फिर एकदम बोला, "अम्मी! दूध थोड़ा तो नहीं है?"

"बहुत है, मेरे बेटे! इतना ही बहुत है।"

"हां अम्मी! सब दूध बंट चुका था। यह उसके अपने पीने का दूध था।"

"अपने!"

"हां! अपने और छोटे भाई के। जरा-सा रखकर सब उसने मुझे दे दिया।"

फातिमा का दिल भर आया। गद्गद होकर बोली, "खुदा उसका भला करे। उसने गरीब की मदद की है।"

और फिर उन्होंने खुशी-खुशी ईद मनाने की तैयारी की। फातिमा का बुखार हलका हो गया। उसने अहमद को नहलाया और कपड़े बदले। किसी तरह वह उसके लिए कुरता-पाजामा तो नया बना सकी थी पर जूता पुराना ही था। उसे तेल से रगड़कर चमका दिया और टोपी पर नयी बेल टांक दी। अहमद खुश होकर बाहर साथियों में चला गया। नमाज पढ़ने जाना था और उसके बाद मेला भी

देखना था। सबकी जेबों में पैसे खनखना रहे थे। सबकी आखें चमक उठी थीं। सबके मन उछल-उछलकर मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर जा पहुंचे थे। अगरचे अहमद के पास बहुत कम पैसे थे, पर क्या हुआ, उसका दिल तो कम खुश नहीं था। कम होता क्यों, अम्मी ने उसे बताया था कि उसके अब्बा दिसावर गये हैं, बहुत रुपये लाएंगे। अगली ईद पर लौटेंगे। जैसे नियाज के अब्बा लौटे थे। यह कम भरोसा था? इसी भरोसे को लेकर वह ईदगाह पहुंचा। वहां उसने हजारों इन्सानों को एक साथ नमाज पढ़ते देखा। उसके बाद उसने मेले की सैर की। चाट, मिठाई, फल, खिलौने सभी तरह की दुकानों की उसने पड़ताल की। उसने सामने साथियों को झूलते हुए देखा पर वह तो सब कुछ अगले साल के लिए छोड़ चुका था। इसलिए जो कुछ पैसे अम्मी ने उसे दिये थे उन्हें ठिकाने लगाकर वह घर लौट आया। देखा सेवैयां बन चुकी हैं। गरम-गरम लम्बी-लम्बी सेवैयां उसे बड़ी खूबसूरत लगीं। बीच-बीच में गोशे की फांक पड़ी थी। शक्कर की वजह से दूध कुछ पीला हो गया था। उसका दिल बाग-बाग हो उठा। फातिमा ने प्यार से देखा और कहा, "मेरे बच्चे! जा, कटोरा ले आ और खाला के घर सेवैयां दे आ। फिर मामू के घर जाना और फिर....."

अहमद बोला, "सबके घर देते हैं?"

"हां बेटा! वे भी तो हमें भेजेंगे।"

"अच्छा अम्मी, मैं अभी दे आता हूं।"

और फातिमा ने दोनों कटोरों में सेवैयां भरीं और उन पर रुमाल ढंक दिया कि कहीं चील झपट्टा न मार ले। अहमद पहले एक कटोरा उठा कर चला लेकिन जैसे ही वह दरवाजे से बाहर हुआ उसे एक बात याद आ गयी —सेवैयां सबसे पहले दिलीप के घर देनी चाहिए। उसने मुझे दूध दिया था, अपने हिस्से का दूध !

सहसा यहीं आकर कहानी को रुक जाना पड़ा। गाड़ी स्टेशन पर आ गयी थी और मुझे यहीं उतरना था। डिब्बे की संजीदगी को भंग करता हुआ मैं अपना बैग उठा कर नीचे उतर गया। नीचे आकर उनकी तरफ देखते हुए मैंने कहा, "मैं नहीं जानता आपकी कहानी कहां खत्म होगी। पर इतना जरूर जान गया हूं, आप ही अहमद हैं।"

अहमद साहब मुस्कराये, उन्होंने कहा, "आपने ठीक पहचाना, मैं ही वह लड़का हूं।"

मैंने पूछा, "लेकिन सच कहना, मुहब्बत की वह लकीर क्या आज बिलकुल ही मिट गयी है ?"

वह उसी तरह मुस्करा रहे थे। बोले, "मेरे दोस्त ! इस दुनिया में मिटने वाला कुछ भी नहीं है। मुहब्बत तो हरगिज नहीं। सिर्फ हमारी गफलत से कभी-कभी उस पर परदा पड़ जाता है।"

"तो" मैंने कहा, "विश्वास रखिये, उस परदे को फाड़ देने में हम कोई कसर उठा न रखेंगे।"

इतना कहकर मैं चला आया। कहानी शायद आगे बढ़ी होगी। पर मेरे लिए यह अधूरी कहानी ही दिल का दर्द बन बैठी है। रात के सन्नाटे में कभी-कभी मेरे दिल में इतनी टीस उठती है कि क्या बताऊं.....

□ □ □

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
शफीक मेमोरियल
17-बी, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110 002